दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

<u>निर्णय सुरक्षित: 18.01.2024</u>
<u>निर्णय उदघोषित की तिथि: 05.04.2024</u>

<u>मू.वि.या.(वाणि.) 250/2021 और अंतर. आ. 10669/2021</u>

वि.प्रति. के माध्यम से मोह. आमीन(मृतक) व अन्य

.... याचिकाकर्ता

द्वारा: सुश्री सुमिता हजारिका, सुश्री नाजिया परवीन, अधिवक्तागण

बनाम

वि.प्रति. के माध्यम से मो. इकबाल (मृतक) एवं अन्य

.... प्रत्यर्थीगण

द्वारा: श्री संजय बंसल, श्री पुष्कर सूद, सुश्री स्वाति बंसल, सुश्री आयुषी बंसल, सुश्री वैशाली गुप्ता, श्री प्रियदर्शी कुमार, अधिवक्तागण|

<u>मू.वि.या. (प्र.) (वाणि.) 129/2021</u>

वि.प्रति. के माध्यम से मो. इकबाल (मृतक) एवं अन्य

....डिक्री धारक

द्वारा: श्री संजय बंसल, श्री पुष्कर सूद, सुश्री स्वाति बंसल, सुश्री आयुषी बंसल, सुश्री वैशाली गुप्ता, श्री प्रियदर्शी कुमार, अधिवक्तागण|

बनाम

वि.प्रति. के माध्यम से मोह. आमीन(मृतक) व अन्य

.....निर्णित ऋणी

द्वारा: सुश्री सुमिता हजारिका, सुश्री नाजिया परवीन, अधिवक्तागण

कोरमः
माननीय न्यायमूर्ति श्री जसमीत सिंह

निर्णय

न्या. जसमीत सिंह

मू.वि.या. (वाणि.) 250/2021

1. यह याचिका मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (इसके बाद, अधिनियम) की धारा 34 के तहत है जो मध्यस्थता वाद सं. (एआर) 9/2019 में पारित दिनांक 18.05.2021 के पंचाट (इसके बाद, आक्षेपित पंचाट) को चुनौती देती है जिसके तहत विद्वान एकमात्र मध्यस्थ ने याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध प्रत्यर्थीगण के दावों को अनुमति दी है और इस तरह मूल रूप से याचिकाकर्ताओं को 268, नसीम बाग, जामिया नगर,

ओखला, नई दिल्ली (इसके बाद, विवादित भूखंड/भूमि) में स्थित 435 वर्ग गज की भूमि का कब्जा पुनः देने का निर्देश दिया है।

संक्षिप्त तथ्य

2. संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:

3. प्रत्यर्थीगण (मध्यस्थता कार्यवाही में दावेदार) के पूर्ववर्ती अर्थात स्वर्गीय मोहम्मद इकबाल कथित रूप से 1974 से लेकर 25.02.1991 तक विवादित भूखंड पर अवैध और अनधिकृत कब्जे में थे।

4. याचिकाकर्ताओं (प्रतिकथनों और मध्यस्थता कार्यवाही में प्रत्यर्थी) के पूर्ववर्ती हितधारी यानी स्वर्गीय मोहम्मद अमीन ने स्थायी निषेधाज्ञा के लिए स्वर्गीय मोहम्मद इकबाल के खिलाफ वाद सं. 331/1989 शुरू किया ताकि प्रतिवादी (मोहम्मद इकबाल) को विवादित भूमि पर उसके (मोहम्मद अमीन) कब्जे और शांतिपूर्ण उपयोग के अधिकार में हस्तक्षेप करने से रोका जा सके। वाद के लंबित रहने के दौरान, पक्षों ने दिनांक 25.02.1991 (इसके बाद, समझौता) के समाधान समझौते पर हस्ताक्षर किए और अपने शपथ-पत्रों के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद, सि.प्र.सं.) के आदेश XXIII नियम 3 के तहत संयुक्त आवेदन दायर किया और इस निर्देश के साथ वाद वापस ले लिया गया कि पक्ष समझौते की शर्तों से बंधे रहेंगे।

5. समझौते में दर्ज किया गया कि मोहम्मद अमीन खसरा सं. 138 (5 बीघा, 3 बिस्वा), 139 (11 बिस्वा), 140 (2 बीघा, 6 बिस्वा) और 141 (2 बीघा, 1 बिस्वा) में स्थित नसीम बाग नामक संपत्ति के एकमात्र मालिक और कब्जे में थे जिसका क्षेत्रफल लगभग 8430 वर्ग मीटर था। मोहम्मद अमीन ने डेवलपर मेसर्स यूनिटेक लिमिटेड के साथ 6000 वर्ग मीटर के उक्त संपत्ति के एक हिस्से को *मल्टी स्टोरीड ग्रुप हाउसिंग कॉमप्लेक्स* (इसके बाद, परियोजन) में विकसित करने के लिए समझौता किया था। समझौते में यह भी दर्ज किया गया कि मोहम्मद इकबाल ने विवादित भूमि पर "कथित रूप से" अवैध और अनाधिकृत कब्ज़ा कर रखा था और "कथित रूप से" उस पर अवैध निर्माण भी किया था। आगे की मुकदमेबाजी से बचने के लिए समझौता किया गया था, और उसी के तहत विवादित भूमि को परियोजना के लिए मोहम्मद अमीन को इस शर्त पर सौंप दिया गया था कि मोहम्मद अमीन परियोजना भवन में कुल निर्मित क्षेत्र का 6% हिस्सा मोहम्मद इकबाल को देगा।

6. समझौते के खंड 10 के अनुसार, दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि यदि किसी कारण से प्रस्तावित परियोजना को छोड़ दिया जाता है तो विवादित भूमि मोहम्मद इकबाल को वापस कर दी जाएगी जो तब उक्त भूमि का अपनी इच्छानुसार उपयोग करने के लिए स्वतंत्र होगा और समझौता अमान्य हो जाएगा। खंड 10 इस प्रकार है:

10. उपर्युक्त के प्रति पूर्वाग्रह के बिना, पक्षों के बीच यह विशेष रूप से सहमति व्यक्त की जाती है कि यदि किसी भी कारण से, उपरोक्त मल्टी स्टोरीड ग्रुप हाउसिंग कॉमप्लेक्स परियोजना को छोड़ दिया जाता है तो 435 वर्ग गज के भूखंड का क्षेत्र दूसरे पक्ष को वापस कर दिया जाएगा और यह समझौता अमान्य हो जाएगा और दूसरा पक्ष अपनी इच्छानुसार उक्त भूमि का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र होगा|

परियोजना के परित्याग की स्थिति में, उक्त क्षेत्र का कब्ज़ा दूसरे पक्ष को वापस कर दिया जाएगा। हालाँकि, यदि उक्त वापसी या उसके कारण कोई वित्तीय देयता उत्पन्न हुई है तो दूसरा पक्ष प्रथम पक्ष को नुकसान से बचाएगा और क्षतिपूर्ति करेगा।

7. वर्ष 1999 में, मोहम्मद इकबाल ने विवादित भूखंड की वापसी के लिए प्रार्थना करते हुए इस न्यायालय के समक्ष निष्पादन मुकादमा सं. 191/1999 दायर किया। न्यायालय ने दिनांक 12.01.2004 के आदेश के अनुसार रजिस्ट्री को दिनांक 25.02.1991 के आदेश के अनुसार डिक्री तैयार करने का निर्देश दिया जिसके बाद दिनांक 24.02.2004 को औपचारिक डिक्री तैयार की गई। हालाँकि, न्यायालय ने दिनांक 12.03.2004 के आदेश के अनुसार यह माना कि निष्पादन याचिका स्वीकार्य नहीं थी क्योंकि समझौते के खंड 10 में पक्षों के बीच एक नया अनुबंध शामिल था और इसलिए, दिनांक 25.02.1991 का आदेश निष्पादन योग्य नहीं था।

8. अपील पर, इस न्यायालय की खंडपीठ ने इसके निष्कर्ष से असहमति जताते हुए मामले को निष्पादन न्यायालय को वापस भेज दिया, और पुनः

वापस भेजे जाने पर, एकल न्यायाधीश पीठ ने दिनांक 30.11.2007 के आदेश द्वारा निष्पादन याचिका को अनुमति दे दी और मोहम्मद इकबाल के पक्ष में विवादित भूमि के कब्जे के वारंट जारी कर दिए।

9. इस आदेश के विरुद्ध मोहम्मद अमीन ने अपील दायर की और खंड पीठ ने दिनांक 15.04.2009 के आदेश में माना कि मोहम्मद इकबाल उस मुकदमे में डिक्री के निष्पादन की मांग नहीं कर सकते थे जिसे वापस लिया गया मानते हुए खारिज कर दिया गया था और अपील को स्वीकार कर लिया।

10. स्वर्गीय मोहम्मद इकबाल (जिनका निधन वर्ष 2008 में हो गया था) के कानूनी प्रतिनिधियों अर्थात् प्रत्यर्थीगण इस आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय में सिविल अपील सं. 6936/2011 के रूप में चुनौती दी, जिसे पक्षों के संयुक्त अनुरोध पर समझौते से उत्पन्न विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करके दिनांक 17.09.2019 का निपटान किया गया।

11. विद्वान एकमात्र मध्यस्थ के समक्ष, प्रत्यर्थीगण ने निम्नलिखित दावे पंजीकृत किए:

> *"<u>दावा-I:</u>- दिनांक 25.02.1991 के समाधान समझौता के खंड 10 के अनुसार, दावेदारों को 268, नसीम बाग, जामिया नगर, ओखला, नई दिल्ली में स्थित 435 वर्ग गज (साइट योजना अनुलग्नक सी-2 के अनुसार) के भूखंड का खाली कब्जा सौंपना;*
>
> *<u>दावा-II:-</u> अधिग्रहण के समय संबंधित भूमि पर मौजूद निर्माण को हटाने और संबंधित भूखंड को दावेदारों को विलंब से वापस करने के लिए दावेदार*

को 25,00,000/- रुपये (केवल पच्चीस लाख रुपये) के रूप में मुआवजा और क्षति पंचाट दिया जाएगा;

<u>दावा-III:-</u> मुकदमे की लागत और व्यय का भुगतान करें|

12. याचिकाकर्ताओं ने एक प्रतिकथन भी प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने प्रत्यर्थीगण के अवैध कृत्यों के कारण हुई मानसिक पीड़ा के लिए 4/5 करोड़ रुपये की क्षतिपूर्ति का दावा किया।

आक्षेपित पंचाट

13. आक्षेपित पंचाट के माध्यम से, विद्वान एकमात्र मध्यस्थ ने याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध प्रत्यार्थीगण के दावों को स्वीकार कर लिया। यह इस प्रकार है:-

"70. उपरोक्त निष्कर्षों के मद्देनजर, न्यायाधिकरण निम्नलिखित निर्णय देता है:

(i) दावेदारों के दावे सं. I को स्वीकार किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे दावेदारों को 268, नसीम बाग, जामिया नगर, ओखला, नई दिल्ली में स्थित 435 वर्ग गज के विवादित भूखंड का कब्जा, समझौते के खंड 10 के अनुसार दिनांक 25.02.1991 तक उस पर बने निर्माणों सहित तीस दिनों के भीतर वापस सौंप दें।

(ii) यदि विवादित भूमि पर खड़े निर्माण, जिनका वर्णन ऊपर किया गया है और स्थानीय आयुक्त की दिनांक 04.03.1989 की रिपोर्ट और उसके साथ संलग्न फोटोग्राफ तथा वाद सं. 331/1989 में प्रस्तुत किए गए प्रमाणों द्वारा प्रमाणित है और आज की तिथि तक अस्तित्व में नहीं हैं तो प्रत्यर्थीगण दावेदारों को क्षतिपूर्ति/हर्जाना के रूप में उनके धन मूल्य के रूप में

15,00,000/- (केवल पंद्रह लाख रुपए) की राशि का भुगतान करेंगे। दावा सं. II को इस परिसीमा तक अनुमति दी जाती है।

(iii) यदि खंड II के अनुसार 15,00,000/- रुपये (केवल पन्द्रह लाख रुपये) की राशि देय है, तो प्रत्यर्थीगण 60 दिनों के भीतर दावेदारों को इसका भुगतान करेंगे।

(iv) मध्यस्थता की लागत 12,69,380/- रुपये (बारह लाख उनसठ हजार तीन सौ अस्सी रुपये मात्र) आंकी गई है जिसका भुगतान प्रत्यर्थीगण द्वारा दावेदारों को 60 दिनों के भीतर किया जाएगा।

(v) यदि पंचाट की धनराशि का भुगतान 60 दिनों के भीतर नहीं किया जाता है, तो उस पर 60 दिनों के बाद से भुगतान की तिथि तक 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज लगेगा।

71. प्रत्यर्थीगण का प्रतिकथन अस्वीकृत किया जाता है|

प्रस्तुतियाँ (याचीगण)

14. याचिकाकर्ताओं की विद्वान अधिवक्ता सुश्री हजारिका ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी हैं:

15. उन्होंने कहा कि आक्षेपित पंचाट कानून के अनुसार खराब और विकृत है तथा भारत की सार्वजनिक नीति के विरुद्ध है। उन्होंने कहा कि समझौते में यह दर्ज है कि *"दूसरा पक्ष कथित रूप से भूमि के एक टुकड़े पर अवैध और अनधिकृत कब्जे में था"* और *"उस पर कथित रूप से अवैध निर्माण किया*"। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता आक्षेपित पंचाट के अनुच्छेद 31 का संदर्भ देते हैं, जो इस प्रकार है:

"31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 17.09.2019 के आदेश में उल्लिखित संदर्भ की शर्तों के पाठ और संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, मोहम्मद इकबाल द्वारा मोहम्मद अमीन को भूमि सौंपे जाने के समय विवादित भूमि और उस पर किए गए निर्माणों के अधिकार, स्वामित्व और हित और/या कब्जे की वैधता से संबंधित प्रश्न इस न्यायाधिकरण की जांच के दायरे से बाहर हैं..."

16. यह कहा गया है कि विद्वान मध्यस्थ ने अतिक्रमणकारी को मुआवज़ा देकर वास्तव में बड़े अतिक्रमणकारी को निजी संपत्ति पर अतिक्रमण करने में सहायता की है। उन्होंने कहा कि यह स्वीकृत तथ्य है कि प्रत्यर्थीगण के पास विवादित संपत्ति पर अपने वैध अधिकारों को दिखाने के लिए किसी भी तरह का सबूत नहीं है। समझौते के अनुसार, मोहम्मद इकबाल भूमि के प्रत्यावर्तन का हकदार था यानी उसे उसी स्थिति में रखा जाएगा जिसमें वह वाद सं. 331/89 दायर करने से पहले था यानी अतिक्रमणकारी के रूप में।

17. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर प्रतिकथन अवैध रूप से और गलत तरीके से बिना सोचे-समझे खारिज कर दिया गया है। यह कहा गया है कि विद्वान मध्यस्थ ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि अतिक्रमण की गई भूमि का मूल्य 30 वर्षों की अवधि में कई गुना बढ़ गया होगा। क्षतिपूर्ति योग्य नुकसान, यदि कोई हो तो याचिकाकर्ताओं द्वारा वहन किया गया है।

18. सुश्री हजारिका ने आगे तर्क दिया कि जब याचिकाकर्ताओं ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय में मध्यस्थता संदर्भ पर सहमति व्यक्त की, तो उन्होंने परिसीमा के संबंध में बात नहीं छोड़ी और इसलिए याचिकाकर्ताओं के साथ इस आधार पर पक्षपात नहीं किया जा सकता।

19. आगे यह तर्क दिया गया कि विद्वान मध्यस्थ ने याचिकाकर्ताओं को इससे निपटने का अवसर दिए बिना धारा 14 (परिसीमा अधिनियम, 1963) के आधार पर निर्णय लिया है और इसलिए, आक्षेपित पंचाट प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है। यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा धारा 14 का कोई इस्तेमाल नहीं किया गया था, न ही इस आशय की कोई विशिष्ट दलील या कथन था और इसके बावजूद, विद्वान मध्यस्थ ने परिसीमा के आधार पर मुद्दा विरचित किया और प्रत्यर्थीगण के दावों को धारा 14 के आधार पर अनुमति दी गई। यह कहा गया है कि धारा 14 की विशिष्ट दलील दी जानी चाहिए और उसके समर्थन में सबूत पेश किए जाने चाहिए। वर्तमान मामले में, धारा 14 की दलील केवल प्रत्युत्तर में थी, न कि दलीलों में। ***राम सरूप गुप्ता बनाम बिशुन नारायण इंटर कॉलेज***, (1987) 2 एससीसी 555 पर भरोसा किया गया है।

20. यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान मामले के तथ्य, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 का लाभ प्रदान करने के लिए वैधानिक रूप से निर्धारित पूर्व शर्तों को पूरा करने में विफल रहे हैं, जो इस प्रकार हैं: i)

वादी/आवेदक ने उचित तत्परता के साथ अन्य सिविल कार्यवाही का अभियोजन किया है; ii) ऐसी सिविल कार्यवाही प्रथम दृष्टया न्यायालय में या अपील अथवा पुनरीक्षण हो सकती है; iii) ऐसी सिविल कार्यवाही उसी प्रतिवादी/विपरीत पक्ष के विरुद्ध है; iv) कार्यवाही उसी मामले से संबंधित है जो जारी है या उसी राहत के लिए है; v) कार्यवाही पर न्यायालय में सद्भाव में मुकदमा चलाया गया है, जो क्षेत्राधिकार के दोष और इसी तरह की प्रकृति के अन्य कारण के लिए, इसे स्वीकार करने में असमर्थ है; vi) यदि केवल खंड (i) से (v) में आकस्मिकताएं मौजूद हैं, तो वादी/आवेदक द्वारा सिविल कार्यवाही पर अभियोग चलाने के दौरान बिताए गए समय को बाहर रखा जाएगा।

21. सुश्री हजारिका ने कहा कि हालांकि विद्वान मध्यस्थ ने माना है कि प्रत्यर्थीगण उचित परिश्रम और सद्भावना के साथ कार्यवाही को अंजाम दे रहे हैं, मामले के तथ्य ***रवींद्र नाथ सैमुअल डावसन बनाम शिवकाशी,*** (1973) 3 एससीसी 381, ***दीना बनाम भारत सिंह,*** (2002) 6 एससीसी 336, और ***मोहिंदर प्रकाश बनाम डीएलएफ कमर्शियल डेवलपर्स लिमिटेड,*** 2012 एससीसी ऑनलाइन दिल् 932 में निर्धारित और दोहराए गए परीक्षण को पूरा करने में विफल रहे।

22. इस मामले के तथ्यों पर परीक्षण लागू करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि वर्ष 1999-2019 के दौरान प्रत्यर्थीगण एक मुकदमे में लगे हुए थे जो

कानून में बनाए रखने योग्य नहीं था। स्व. मोहम्मद इकबाल (प्रत्यर्थीगण के पूर्ववर्ती हितधारी) द्वारा दायर निष्पादन याचिका में, स्व. मोहम्मद अमीन (याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती हितधारी) ने प्रारंभिक आपत्ति ली कि चूंकि समझौते के अनुसार वाद सं. 331/89 को वापस ले लिया गया था इसलिए कोई डिक्री तैयार नहीं की गई थी और इसलिए निष्पादन याचिका बनाए रखने योग्य नहीं थी। इसके अलावा, समझौते में खंड 19 के रूप में एक मध्यस्थता खंड शामिल था, जिसे स्व. मोहम्मद अमीन ने अक्टूबर 2006 में दायर अपनी संशोधित आपत्ति में उठाया था। खंड 19 इस प्रकार है:

> *19. तकनीकी पहलुओं से संबंधित सभी विवाद, मतभेद और इस समझौते से उत्पन्न होने वाले या समझौते के प्रावधानों की व्याख्या के संबंध में, परियोजना वास्तुकार को एकमात्र मध्यस्थ के रूप में संदर्भित किया जाएगा, जिसका निर्णय अंतिम होगा और इसमें शामिल पक्षों पर बाध्यकारी होगा। भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 के प्रावधान या उसमें कोई भी वैधानिक संशोधन ऐसे मध्यस्थता पर लागू होंगे। कार्यक्रम स्थल दिल्ली में होगा।*

23. यह कहा गया है कि विद्वान मध्यस्थ के समक्ष दायर किए गए प्रस्तुतीकरण में भी, प्रत्यर्थीगण ने यह माना है कि निष्पादन याचिका दाखिल करना वास्तव में सही कानूनी उपाय था। इसके अलावा, मध्यस्थ ने यह भी स्वीकार नहीं किया या दावा नहीं किया कि निष्पादन याचिका दाखिल करना गलत उपाय था। दिनांक 15.04.2009 के खंड पीठ के

आदेश ने क्षेत्राधिकार की कमी के कारण निष्पादन याचिका को खारिज नहीं किया। इस प्रकार, यह कहा गया है कि इसलिए परिसीमा अधिनियम की धारा 14 को लागू नहीं किया जा सकता है।

24. सुश्री हजारिका का तर्क है कि प्रत्यर्थीगण ने वाद हेतुक उत्पन्न होने से 3 वर्ष की परिसीमा अवधि के भीतर मध्यस्थता खंड का लाभ उठाने में विफल रहने के बाद 2006 में समझौते के खंड 19 में निहित मध्यस्थता खंड की प्रयोज्यता से इनकार कर दिया। इसके बाद दिनांक 17.09.2019 को निष्पादन में राहत प्राप्त करने में विफल रहने के बाद, प्रत्यर्थीगण ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मध्यस्थता खंड को बिना यह बताए प्रस्तुत किया कि उन्होंने 2006 में इस उपाय को अमान्य बताया था। यह कहा गया है कि विद्वान मध्यस्थ 2006 में इसकी प्रयोज्यता से इनकार करने के बाद 2019 में मध्यस्थता खंड को लाने में प्रत्यर्थीगण की सदभावना की कमी को ध्यान देने में करने में विफल रहे। ***माधवराव नारायणराव पटवर्धन बनाम राम कृष्ण गोविंद भानु,*** 1959 एससीआर 564 पर भरोसा किया गया है।

25. अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह पंचाट समझौते की शर्तों से परे है। समझौते के खंड 10 पर भरोसा करते हुए यह कहा गया है कि मध्यस्थ समझौते के तहत यह मानने का हकदार नहीं था कि भूमि को निर्माण के साथ वापस किया जाना चाहिए। इसके अलावा, यह प्रत्यर्थीगण

की अपनी समझ है कि समझौते के तहत, वे केवल विवादित भूमि के प्रत्यावर्तन के हकदार थे और इससे अधिक कुछ नहीं, जैसा कि उनके द्वारा दायर निष्पादन याचिका में भी दिखाया गया है। ***अलोपी पार्षद एंड संस लिमिटेड बनाम भारत संघ,*** 1960 एससीसी ऑनलाइन एससी 13 मामले पर भरोसा करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यदि अनुबंध की स्पष्ट शर्तों की अनदेखी करते हुए हर्जाना दिया जाता है तो मध्यस्थ कार्यवाही का कदाचार करेगा। ***नैहाटी जूट मिल्स लिमिटेड बनाम ख्यालीराम जगन्नाथ***, 1967 एससीसी ऑनलाइन एससी 10 और ***डब्ल्यू स्टेट वेयरहाउसिंग कॉरपोरेशन बनाम सुशील कुमार कायन***, (2002) 5 एससीसी 679 मामले पर भी भरोसा किया गया है।

प्रस्तुतियाँ (प्रत्यर्थीगण)

26. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री बंसल ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी हैं:-

27. विद्वान अधिवक्ता द्वारा कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं ने विवाद को मध्यस्थता के माध्यम से हल करने के लिए सहमति देते समय, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष परिसीमा द्वारा वर्जित दावे के मुद्दे को नहीं उठाया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 17.09.2019 के आदेश में भी इसका उल्लेख नहीं है। इस प्रकार, याचीगण ने परिसीमा की आपत्ति लिए बिना विद्वान मध्यस्थ के समक्ष प्रत्यर्थीगण के दावों को प्रस्तुत करने

के संबंध में सहमति व्यक्त की। यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने विद्वान मध्यस्थ के समक्ष परिसीमा का दावा उठाया था जिस पर उनके द्वारा सही निर्णय लिया गया है।

28. श्री बंसल ने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती हितधारी ने 'हमेशा परित्याग के तथ्य को विवादित किया', शपथपत्रों के माध्यम से शपथ पर कहा कि वह अभी भी परियोजना के निर्माण के लिए मेसर्स यूनिटेक लिमिटेड के साथ प्रयास कर रहे थे। उन्होंने आगे कहा कि वर्ष 1999 में परित्याग का तथ्य पहली बार याचिकाकर्ताओं द्वारा विद्वान मध्यस्थ (24.02.2020 को दायर) के समक्ष अपने बचाव के बयान में लिया गया था। परिसीमा द्वारा वर्जित दावों की दलील पहले कभी नहीं ली गई थी। उनका तर्क है कि याचिकाकर्ता अपनी सुविधा के अनुसार एक ही समय में अनुमोदन और खंडन नहीं कर सकते।

29. विद्वान अधिवक्ता ने विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न भी उठाए हैं: क) क्या वर्तमान मध्यस्थता कार्यवाही में परिसीमा अधिनियम की धारा 14 लागू होती है; ख) क्या प्रत्यर्थीगण/दावेदारों ने उचित प्रक्रिया का पालन किया है या वर्तमान मध्यस्थता कार्यवाही में धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) का सही ढंग से आह्वान/प्रतिवेदन किया है; ग) क्या प्रत्यर्थीगण/दावेदारों के मामले में धारा 14 के इस्तेमाल और लाभ पर मध्यस्थ का निष्कर्ष तर्कसंगत निष्कर्ष है या विकृत निष्कर्ष है जिसके

लिए अधिनियम की धारा 34 के तहत इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

30. उन्होंने कहा कि सि.प्र.सं. के तहत धारा 14 के लाभ को लागू करने के लिए कुछ प्रक्रिया की आवश्यकता होती है, जबकि मध्यस्थता कार्यवाही में, अधिनियम के अध्याय V के मद्देनजर ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है। अधिनियम की धारा 18, 19, 23 और 24, ***जगजीत सिंह लायलपुरी बनाम यूनिटॉप अपार्टमेंट्स एंड बिल्डर्स लिमिटेड,*** (2020) 2 एससीसी 279 और ***श्रेई इंफ्रास्ट्रक्चर फाइनेंस लिमिटेड बनाम टफ ड्रिलिंग (पी) लिमि.***, (2018) 11 एससीसी 470 पर निर्भर किया गया है।

31. उन्होंने आगे कहा कि परिसीमा अधिनियम की धारा 14 की दलील प्रत्यर्थीगण द्वारा उनके प्रत्युत्तर में ली गई है और प्रत्यर्थीगण/दावेदारों के दिनांक 26.03.2021 के प्रत्युत्तर तर्कों के लिखित नोट में विशेष रूप से दलील दी गई है। विद्वान मध्यस्थ ने परिसीमा के मुद्दे को मुद्दा सं. 1 के रूप में विरचित किया था, इस प्रकार, यह कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं को परिसीमा के मुद्दे के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर मिला था और विद्वान मध्यस्थ द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया में कोई विकृति नहीं है। इसके अलावा, यह तर्क दिया गया है कि धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) के इस्तेमाल और लाभ के प्रश्न पर विद्वान मध्यस्थ द्वारा दिए गए तर्क में कोई विकृति नहीं पाई जा सकती है जिन्होंने पक्षों की दलीलों

को ध्यान दिया है, उनकी दलीलों पर विचार किया है और फिर निष्कर्ष दिया है।

32. अंत में, श्री बंसल ***दिल्ली एयरपोर्ट मेट्रो एक्सप्रेस (पी) लिमिटेड बनाम डीएमआरसी***, (2022) 1 एससीसी 131, ***सैंगयोंग इंज. एंड कंस्ट्रक्शन को. लिमिटेड बनाम एनएचएआई,*** (2019) 15 एससीसी 131, ***एसोसिएट बिल्डर्स बनाम डीडीए,*** (2015) 3 एससीसी 49, ***पावर ग्रिड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया बनाम एलएस केबल*** 2018: डीएचसी: 6776-डीबी में दिए गए निर्णयों पर निर्भर करते हैं जो अधिनियम की धारा 34 के तहत मध्यस्थता पंचाट में न्यायालय के हस्तक्षेप के दायरे पर चर्चा करते हैं। यह कहा गया है कि वर्तमान मामले में, याचीगण द्वारा आक्षेपित पंचाट में कोई स्पष्ट अवैधता नहीं दिखाई जा सकती है और यह अच्छी तरह से तर्कपूर्ण है और इस प्रकार वर्तमान याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

विश्लेषण

33. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना है।

धारा 34 के तहत हस्तक्षेप का दायरा

34. अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिका से निपटने में इस न्यायालय के हस्तक्षेप और समीक्षा की शक्ति का दायरा कई निर्णयों में रेखांकित किया गया है और विशेष रूप से ***एसोसिएट बिल्डर्स बनाम डीडीए,*** (2015) 3

एससीसी 49, ***सैंगयोंग इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन को. लिमिटेड बनाम एनएचएआई,*** (2019) 15 एससीसी 131 और ***दिल्ली एयरपोर्ट मेट्रो एक्सप्रेस (पी) लिमि. बनाम डीएमआरसी***, (2022) 1 एससीसी 131 में।

35. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***एसोसिएट बिल्डर्स*** (पूर्वोक्त) मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

> *"17. यह देखा जाएगा कि धारा 34 की उपधारा (2)(क) में निहित कोई भी आधार मध्यस्थ पंचाट द्वारा दिए गए निर्णय की योग्यता से संबंधित नहीं है। यह केवल तभी होता है जब हम पाते हैं कि पंचाट भारत में सार्वजनिक नीति के साथ संघर्ष में है, तब मध्यस्थ पंचाट की योग्यता पर कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में विचार किया जाना चाहिए। ....*
>
> *29. यह स्पष्ट है कि "न्यायिक दृष्टिकोण" का न्यायिक सिद्धांत यह मांग करता है कि निर्णय निष्पक्ष, उचित और वस्तुनिष्ठ हो। दूसरी ओर, कोई भी मनमानी और अस्थिर बात स्पष्ट रूप से संकल्प नहीं होगा जो निष्पक्ष, उचित या वस्तुनिष्ठ हो।*
>
> *30. दूसरे पक्ष को भी सुनने का सिद्धांत जो निस्संदेह भारतीय कानून में एक मौलिक न्यायिक सिद्धांत है, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 18 और 34(2)(क)(iii) में भी निहित है।*
>
> *....*
>
> *31. तीसरा न्यायिक सिद्धांत यह है कि ऐसा निर्णय जो विकृत या इतना तर्कहीन है कि कोई भी उचित व्यक्ति उस पर नहीं पहुंचा होगा, महत्वपूर्ण है और इसके लिए कुछ हद तक स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है। यह तय किया गया कानून है कि जहाँ:*
>
> *(i) यदि निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, या*

(ii) मध्यस्थ अधिकरण अपने निर्णय से संबंधित किसी अप्रासंगिक बात को ध्यान में रखता है;

(ग) अपने निर्णय पर पहुंचने में महत्वपूर्ण साक्ष्य की अनदेखी करता है, तो ऐसा निर्णय अनिवार्य रूप से विपरीत होगा।

....

33. यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि जब कोई न्यायालय किसी मध्यस्थता पंचाट पर "सार्वजनिक नीति" परीक्षण लागू कर रहा होता है, तो वह अपील के न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है और परिणामस्वरूप तथ्यों की त्रुटियों को ठीक नहीं किया जा सकता है। तथ्यों पर मध्यस्थ के दृष्टिकोण को द्वारा संभावित को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि मध्यस्थ ही उस साक्ष्य की मात्रा और गुणवत्ता का अंतिम स्वामी होता है जिसको आधार बना कर वह अपना मध्यस्थता पंचाट देता है। इस प्रकार कम साक्ष्य या ऐसे साक्ष्य पर आधारित पंचाट जो एक काबिल कानूनी पेशेवर के अनुसार कम गुणवत्ता वाला है, को इस आधार पर अमान्य नहीं माना जाएगा। एक बार जब यह पाया जाता है कि मध्यस्थ का दृष्टिकोण मनमाना या अस्थिर नहीं है, तो तथ्यों पर उसका अंतिम निर्णय वही होता है। ...

....

42.1 (क) भारत के मूल कानून का उल्लंघन करने पर मध्यस्थ पंचाट की समाप्ति हो जाएगी। इसे इस अर्थ में समझा जाना चाहिए कि इस तरह की अवैधता मामले की जड़ तक जानी चाहिए और यह मामूली प्रकृति की नहीं होनी चाहिए। यह फिर से वास्तव में अधिनियम की धारा 28(1)(क) का उल्लंघन है।.....

....

42.2 (ख) मध्यस्थता अधिनियम का उल्लंघन अपने आप में स्पष्ट अवैधता माना जाएगा - उदाहरण के लिए यदि कोई मध्यस्थ अधिनियम की धारा

31(3) के उल्लंघन में किसी पंचाट के लिए कोई कारण नहीं बताता है, तो ऐसा पंचाट रद्द किया जा सकता है।

42.3 (ग) इसी तरह, पेटेंट अवैधता का तीसरा उपशीर्षक वास्तव में मध्यस्थता अधिनियम की धारा 28(3) का उल्लंघन है....

....

इस अंतिम उल्लंघन को केवियट के रूप में समझा जाना चाहिए। मध्यस्थ अधिकरण को अनुबंध की शर्तों के अनुसार निर्णय लेना चाहिए लेकिन यदि मध्यस्थ अनुबंध की किसी शर्त को उचित तरीके से परिभाषित करता है तो इसका मतलब यह नहीं होगा कि इस आधार पर पंचाट को रद्द किया जा सकता है। अनुबंध की शर्तों का निर्माण मुख्य रूप से मध्यस्थ को तय करना होता है, जब तक कि मध्यस्थ अनुबंध को इस तरह से परिभाषित न करे कि इसे ऐसा कुछ कहा जा सके जिसे कोई निष्पक्ष या बौद्धिक व्यक्ति नहीं कर सकता।

36. इसके बाद, ***सांगयोंग इंजी*** (पूर्वोक्त) में, इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया:

"37. जहां तक भारत में किए गए घरेलू पंचाट का सवाल है, संशोधन अधिनियम, 2015 द्वारा धारा 34 में जोड़ी गई उपधारा (2-क) के तहत अब एक अतिरिक्त आधार उपलब्ध है। यहां, पंचाट के शीर्ष *पर पेटेंट अवैधता दिखाई देनी चाहिए, जो ऐसी अवैधता को संदर्भित करता है जो मामले की जड़ तक जाती है लेकिन जो कानून के केवल गलत इस्तेमाल के बराबर नहीं है। संक्षेप में, जो भारतीय कानून की मौलिक नीति के भीतर शामिल नहीं है, अर्थात्, सार्वजनिक नीति या सार्वजनिक हित जो कानून के उल्लंघन से जुड़े नहीं है, उन्हें गुप्त रूप से नहीं लाया जा सकता है जब पेटेंट अवैधता के आधार पर पंचाट को अलग करने की बात आती है।*

38. दूसरे, यह भी स्पष्ट किया जाता है कि साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन, जिसको अपीलीय न्यायालय को करने की अनुमति है को पंचाट के पृष्ठ पर दिखाई देने वाली पेटेंट अवैधता के आधार पर अनुमति नहीं दी जा सकती है।

39. स्पष्ट करने के लिए, एसोसिएट बिल्डर्स के पैरा 42.1, अर्थात, भारत के मूल कानून का मात्र उल्लंघन, अब मध्यस्थ पंचाट को रद्द करने के लिए उपलब्ध आधार नहीं है। हालाँकि, एसोसिएट बिल्डर्स का पैरा 42.2 बना रहेगा, क्योंकि यदि मध्यस्थ पंचाट के लिए कोई कारण नहीं बताता है और 1996 अधिनियम की धारा 31(3) का उल्लंघन करता है, तो यह निश्चित रूप से पंचाट के आधार पर पेटेंट अवैधता होगी।

40. संशोधन अधिनियम द्वारा धारा 28(3) में किया गया परिवर्तन वास्तव में एसोसिएट बिल्डर्स में पैरा 42.3 से 45 में उल्लेख अनुसार है, अर्थात, जब तक कि मध्यस्थ संविदा का निर्माण इस तरह से न करे कि यह किसी निष्पक्ष या बौद्धिक व्यक्ति के लिए स्वीकार्य न हो ; संक्षेप में, मध्यस्थ का दृष्टिकोण विचारणीय भी न हो, संविदा की शर्तों का निर्धारण मुख्य रूप से मध्यस्थ द्वारा तय किया जाना है । इसके अलावा, यदि मध्यस्थ संविदा से बाहर जाता है और उसे आवंटित नहीं किए गए मामलों से निपटता है, तो वह अधिकार क्षेत्र की त्रुटि करता है। चुनौती का यह आधार अब धारा 34(2-क) के तहत जोड़े गए नए आधार के अंतर्गत आएगा।

41. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि एसोसिएट बिल्डर्स के पैरा 31 और 32 में समझा गया निर्णय जो कि विकृत है, जो कि अब "भारत की सार्वजनिक नीति" के तहत चुनौती के लिए आधार नहीं है, निश्चित रूप से पंचाट के शीर्ष पर पेटेंट अवैधता के बराबर होगा। इस प्रकार, बिना किसी सबूत के आधार पर निष्कर्ष या ऐसा पंचाट जो अपने निर्णय पर पहुंचने में महत्वपूर्ण सबूतों को नजरअंदाज करता है, विकृत होगा और पेटेंट अवैधता के आधार पर खारिज किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, मध्यस्थ द्वारा पक्षों की पीठ पीछे लिए गए दस्तावेजों पर आधारित निष्कर्ष भी बिना सबूत के आधार पर निर्णय के रूप में योग्य होगा क्योंकि ऐसा निर्णय पक्षों द्वारा

दिए गए सबूतों पर आधारित नहीं है, और इसलिए, इसे भी विकृत के रूप में चिह्नित किया जाना चाहिए।

37. हाल ही में, ***दिल्ली एयरपोर्ट मेट्रो एक्सप्रेस*** (पूर्वोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 34 के दायरे के संबंध में स्थिति को दोहराया और संक्षेप में प्रस्तुत किया है:

> *"28. इस न्यायालय ने कई अन्य निर्णयों में 1996 अधिनियम की धारा 34 की व्याख्या की है, जिसमें मध्यस्थता पंचाट की वैधता की जांच करते समय न्यायालयों द्वारा दिखाए जाने वाले संयम पर जोर दिया गया है। मध्यस्थता पंचाट को रद्द करने के लिए न्यायालयों के पास उपलब्ध सीमित आधार कानूनी रूप से प्रशिक्षित पेशेवरों को अच्छी तरह से ज्ञात हैं। हालांकि, न्यायालयों के समक्ष आने वाले प्रत्येक मामले के तथ्यों में हस्तक्षेप के लिए अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों को लागू करने में कठिनाई उत्पन्न होती है। न्यायालयों द्वारा मध्यस्थता पंचाट को अलग रखने की परेशान करने वाली प्रवृत्ति है, मामलों के तथ्यात्मक पहलुओं का विश्लेषण और पुनर्मूल्यांकन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंचाट में हस्तक्षेप की आवश्यकता है और उसके बाद पंचाट को रद्द करने के लिए उपलब्ध अन्य आधारों के अलावा, या तो विकृति या स्पष्ट अवैधता द्वारा गलत करार देते हैं। यह दृष्टिकोण 1996 अधिनियम के उद्देश्य और इस उद्देश्य को संरक्षित करने के लिए किए गए प्रयासों को नष्ट कर देगा, जो कि मध्यस्थता पंचाट में न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप है। इसके अलावा, इस न्यायालय के कई न्यायिक निर्णय निरर्थक हो जाएंगे यदि मध्यस्थ निर्णयों को उक्त अभिव्यक्तियों के स्वरूप को समझे बिना उन्हें विकृत या स्पष्ट रूप से अवैधानिक बताकर दरकिनार कर दिया जाए।*

29. पेटेंट अवैधता वह अवैधता होनी चाहिए जो मामले की जड़ तक जाती हो। दूसरे शब्दों में, मध्यस्थ अधिकरण द्वारा की गई कानून की हर त्रुटि "पेटेंट अवैधता" की अभिव्यक्ति के अंतर्गत नहीं आएगी। इसी तरह, कानून के गलत इस्तेमाल को पेटेंट अवैधता के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, सार्वजनिक नीति या सार्वजनिक हित से न जुड़े कानून का उल्लंघन "पेटेंट अवैधता" की अभिव्यक्ति के दायरे से बाहर है। न्यायालयों के लिए यह निषिद्ध है कि वे इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करें कि पंचाट *में पेटेंट अवैधता दिखाई दे रही है, क्योंकि न्यायालय मध्यस्थ पंचाट के खिलाफ अपील में नहीं बैठते हैं। पेटेंट अवैधता के आधार पर धारा 34(2-क) के तहत घरेलू पंचाट में हस्तक्षेप करने के लिए स्वीकार्य आधार तब होता है जब मध्यस्थ ऐसा दृष्टिकोण अपनाता है जो संभव भी नहीं है, या संविदा में किसी खंड की इस तरह से व्याख्या करता है जिसे कोई निष्पक्ष या बौद्धिक व्यक्ति नहीं करेगा, या यदि मध्यस्थ संविदा से बाहर जाकर और उन्हें आवंटित नहीं किए गए मामलों से निपटकर अधिकार क्षेत्र की त्रुटि करता है। अपने निष्कर्षों के लिए कोई कारण न बताने वाला मध्यस्थ पंचाट इस कारण से चुनौती के लिए अतिसंवेदनशील होगा। मध्यस्थ के निष्कर्ष जो बिना किसी सबूत पर आधारित हैं या महत्वपूर्ण सबूतों की अनदेखी करके निकाले गए हैं, वे विकृत हैं और उन्हें पेटेंट अवैधता के आधार पर खारिज किया जा सकता है। साथ ही, उन दस्तावेजों पर विचार करना जो दूसरे पक्ष को नहीं दिए गए हैं, विकृति का एक पहलू है जो अभिव्यक्ति "पेटेंट अवैधता" के अंतर्गत आता है।*

30.धारा 34(2)(ख) अन्य आधारों को संदर्भित करती है, जिसके आधार पर कोई न्यायालय मध्यस्थता पंचाट *को रद्द कर सकता है। यदि कोई विवाद जो मध्यस्थता द्वारा निपटान योग्य नहीं है तो वह पंचाट का विषय है या यदि पंचाट भारत की सार्वजनिक*

नीति के साथ संघर्ष में है, तो पंचाट रद्द किया जा सकता है। 2015 के संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित स्पष्टीकरण (1) ने "भारत की सार्वजनिक नीति" अभिव्यक्ति और मध्यस्थ पंचाटो की समीक्षा के प्रयोजनों के लिए इसके अर्थ को स्पष्ट किया। यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कोई पंचाट भारत की सार्वजनिक नीति के साथ तभी संघर्ष में होगा जब वह धोखाधड़ी या भ्रष्टाचार से प्रेरित या प्रभावित हो या 1996 के अधिनियम की धारा 75 या धारा 81 का उल्लंघन करता हो।

31. सांगयोंग [सांगयोंग इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम एनएचएआई, (2019) 15 एससीसी 131:: (2020) 2 एससीसी (सिव.) 213] में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि "भारतीय कानून की मूलभूत नीति" अभिव्यक्ति का अर्थ रेनुसागर पावर कंपनी लिमिटेड बनाम जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी [रेनुसागर पावर कंपनी लिमिटेड बनाम जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी, 1994 सम.(1) एससीसी 644] में इस न्यायालय की समझ के अनुरूप होगा। रेनुसागर [रेनुसागर पावर कंपनी लिमिटेड बनाम जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी, 1994 सम. (1) एससीसी 644] में, इस न्यायालय ने देखा कि विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 जो कि "राष्ट्रीय आर्थिक हित" के लिए अधिनियमित क़ानून है, का उल्लंघन और भारत में उच्च न्यायालयों की अवहेलना भारतीय कानून की मूलभूत नीति के विपरीत होगा। किसी कानून का उल्लंघन जो सार्वजनिक नीति या सार्वजनिक हित से जुड़ा नहीं है, वह भारतीय कानून की मूल नीति के साथ असंगत होने के कारण मध्यस्थ पंचाट को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है और न ही इसे ऊपर चर्चा की गई "स्पष्ट अवैधता" के दायरे में लाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी कानून का उल्लंघन केवल तभी किया जाता है जब वह सार्वजनिक नीति या सार्वजनिक हित से जुड़ा हो, तो पंचाट को भारतीय कानून की मूल नीति के साथ असंगत होने के कारण रद्द

करने का कारण होता है। यदि कोई मध्यस्थ पंचाट न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोरता है, तो इसे न्याय की सबसे बुनियादी धारणाओं के साथ संघर्ष में होने के कारण रद्द किया जा सकता है। इस संदर्भ में नैतिकता के आधार की व्याख्या इस न्यायालय द्वारा यौन नैतिकता के तत्वों, जैसे वेश्यावृत्ति, या ऐसे समझौतों को मान्य किए गए पंचाट को शामिल करने के लिए की गई है जो अवैध नहीं हैं, लेकिन दिन के प्रचलित रीति-रिवाजों को देखते हुए लागू नहीं किए जाएँगे। [सैंगयोंग इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम एनएचएआई, (2019) 15 एससीसी 131: (2020) 2 एससीसी (सिविल) 213]''

38. उपर्युक्त सिद्धांतों के प्रकाश में, मैं इस याचिका में उठाई गई आपत्तियों पर विचार करूंगा।

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों पर

39. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि आक्षेपित निर्णय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है क्योंकि विद्वान मध्यस्थ ने याचीगण को इससे निपटने का अवसर दिए बिना धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) के आधार पर निर्णय लिया है। यह कहा गया है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा दलीलों में धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) की कोई विशेष दलील नहीं दी गई थी और इसके समर्थन में कोई सबूत पेश नहीं किया गया था।

40. यह तर्क असमर्थनीय है।

41. सख्ती से कहें तो सि.प्र.सं. के आदेश VI नियम 1 के तहत, अभिवचन का अर्थ शिकायत या लिखित बयान है। सि.प्र.सं. द्वारा जवाब/प्रतिकृति के

माध्यम से दलीलों की वैधानिक रूप से परिकल्पना नहीं की गई है लेकिन न्यायालय से अनुमति प्राप्त करने के बाद जवाब/प्रतिकृति दाखिल करने की प्रथा समय के साथ विकसित हुई है। ***अनंत कंस्ट्रक्शन (पी) लिमिटेड बनाम राम निवास,*** 1994 एससीसी ऑनलाइन दिल् 615 में न्यायालय द्वारा भी यही देखा गया है जिसमें यह भी दोहराया गया कि जवाब/प्रतिकृति बाद की दलील है, हालांकि, यह मूल दलील (अर्थात् वाद या लिखित बयान) के साथ असंगत नहीं हो सकता है या मूल दलीलों में संशोधन का विकल्प नहीं हो सकता है।

42. फिर भी, मध्यस्थता कार्यवाही में, सि.प्र.सं. के नियम अधिनियम के अध्याय V, विशेष रूप से धारा 19 के प्रकाश में सख्ती से लागू नहीं होते हैं, जो इस प्रकार है:

> *"19. प्रक्रिया के नियमों का निर्धारण।--(1) मध्यस्थ अधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) से आबद्ध नहीं होगा।*
>
> *(2) इस भाग के अधीन रहते हुए, पक्षकार मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा अपनी कार्यवाही के संचालन में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर सहमत होने के लिए स्वतंत्र हैं।*
>
> *(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी समझौते के अभाव में, मध्यस्थ न्यायाधिकरण, इस भाग के अधीन रहते हुए, कार्यवाही उस तरीके से संचालित कर सकेगा जिसे वह उचित समझे।*

(4) उप-धारा (3) के अंतर्गत मध्यस्थ न्यायाधिकरण की शक्ति में किसी साक्ष्य की ग्राह्यता, प्रासंगिकता, भौतिकता और महत्व का निर्धारण करने की शक्ति शामिल है।

43. इसलिए, मेरा मानना है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर किए गए प्रत्युत्तर को शामिल करने के लिए "याचिकाओं" की उदार व्याख्या की जानी चाहिए। इसके अलावा, यह दलीलों का सार है जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, न कि उनके स्वरूप पर। इस दृष्टिकोण का समर्थन ***राम सरूप गुप्ता*** (पूर्वोक्त) द्वारा किया गया है जिसका प्रभावी भाग इस प्रकार है:

"6. यह सुस्थापित है कि दलील के अभाव में, पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य, यदि कोई हो, पर विचार नहीं किया जा सकता है। यह भी समान रूप से स्थापित है कि किसी भी पक्ष को अपनी दलील से आगे जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और पक्ष द्वारा स्वयं स्थापित मामले के समर्थन में सभी आवश्यक और भौतिक तथ्यों की दलील दी जानी चाहिए। दलील का विषयवस्तु और उद्देश्य विरोधी पक्ष को यह जानने में सक्षम बनाना है कि उसे किस मामले का सामना करना है। निष्पक्ष सुनवाई के लिए यह अनिवार्य है कि पक्षकार आवश्यक भौतिक तथ्यों को सुलझा ले ताकि दूसरा पक्ष आश्चर्यचकित न हो। हालाँकि दलीलों को उदारवादी दृष्टिकोण से समझना चाहिए; तकनीकी सूक्ष्मताओं के आधार पर रूढ़िवादी होकर न्याय की हानि नहीं करनी चाहिए। कभी-कभी, दलीलों को ऐसे शब्दों में व्यक्त किया जाता है जो कानून की सख्त व्याख्या के अनुसार स्पष्ट रूप से मामला नहीं बना सकते हैं। ऐसे मामले में न्यायालय का कर्तव्य है कि वह प्रश्न का निर्धारण करने के लिए दलीलों के सार को सुनिश्चित करे। रूप पर अनावश्यक जोर देना वांछनीय नहीं है, इसके बजाय दलीलों के सार पर विचार किया जाना चाहिए। जब भी दलीलों की कमी के बारे में सवाल उठाया जाता है, तो जांच दलीलों के स्वरूप के बारे में नहीं

होनी चाहिए; इसके बजाय न्यायालय को यह पता लगाना चाहिए कि क्या पक्षकारों को मामले और उन मुद्दों के बारे में पता था, जिन पर वे विचारण के लिए गए थे। एक बार जब यह पाया जाता है कि दलीलों में कमी के बावजूद पक्षकारों को मामले की जानकारी थी और उन्होंने सबूत पेश करके उन मुद्दों पर विचारण किया, तो उस स्थिति में किसी पक्ष के लिए अपील में दलीलों की अनुपस्थिति का सवाल उठाना स्पष्ट नहीं होगा..."

44. प्रत्यर्थीगण/दावेदारों द्वारा अपने प्रत्युत्तर में परिसीमा अधिनियम की धारा 14 की दलील ली गई है और प्रत्यर्थीगण//दावेदारों के दिनांक 26.03.2021 के प्रत्युत्तर तर्कों के लिखित लेख में विशेष रूप से दलील दी गई है।

45. प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर प्रत्युत्तर में प्रारंभिक आपत्तियों के उत्तर के अनुच्छेद 3 और 4 में स्पष्ट रूप से धारा 14 का उल्लेख नहीं है फिर भी इसके तत्वों को शामिल किया गया है और वे इस प्रकार हैं:

"3. ....यह प्रस्तुत किया गया है कि जैसे ही वर्ष 1999 में दावेदार के पक्ष में वाद हेतुक उत्पन्न हुआ, उन्होंने तुरंत 25.02.1991 के समझौते को लागू करने की मांग करते हुए निष्पादन याचिका दायर की, जो कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष निष्पादन याचिका सं. 191/1999 थी, जिसे दावेदार के पूर्ववर्ती ने विभिन्न अपीलों में और अंत में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सिविल अपील सं. 6936/2011 में आगे बढ़ाया। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि दावेदारों ने कानून में उपलब्ध अपने उपाय का अनुसरण नहीं किया।

4. ....यह प्रस्तुत किया गया है कि दावेदार के पूर्ववर्ती ने माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष 28.07.1999 को या उसके आसपास निष्पादन

याचिका सं. 191/1999 दायर की थी और इस प्रकार वर्ष 1999 में वाद हेतुक उत्पन्न होते ही उचित कानूनी उपायों का सहारा लिया था।''

46. प्रत्युत्तर तर्कों के लिखित नोट के अनुच्छेद 6 में स्पष्ट रूप से धारा 14 का उल्लेख किया गया है और वह इस प्रकार है:

"6. मेरे उपरोक्त प्रस्तुतियों पर कोई पूर्वाग्रह न रखते हुए, केवल तर्क के लिए, वैकल्पिक रूप से, भले ही अब प्रत्यर्थी के प्रस्तुतीकरण के मद्देनजर यह मान लिया गया हो कि परियोजना को 1999 में छोड़ दिया गया था, यह माननीय न्यायाधिकरण सीमा अवधि की गणना में परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14(1) के साथ स्पष्टीकरण (ग) और मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 43(3) का लाभ देने पर विचार कर सकता है क्योंकि दावेदार ने सद्भावपूर्वक, कानूनी सलाह पर, ध्यानपूर्वक, वर्ष 1999 से 2019 तक एक ऐसी न्यायालय के समक्ष मुकदमा चलाया है जो 'वाद हेतुक' हमेशा विवाद में रहने के कारण इस पर कार्य करने में असमर्थ थी।''

47. इसके अलावा, याचीगण/प्रतिदावी के बचाव के बयान को देखने से पता चलता है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) का विरोध किया गया है, हालांकि स्पष्ट रूप से नहीं, लेकिन निहित रूप से, क्योंकि उन्होंने कहा कि प्रत्यर्थीगण/दावेदारों के पास कानून में स्वीकार्य नहीं (गलत उपाय) का अनुसरण करने के दुर्भावनापूर्ण' (सच्चे नहीं) इरादे थे। इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं ने विद्वान मध्यस्थ के समक्ष यह भी आग्रह किया कि प्रत्यर्थीगण वर्ष 1999 और 2009 के बीच उचित कार्यवाही शुरू करने में विफल रहे। इसके सक्रिय भाग इस प्रकार है:

"8. स्वर्गीय मोहम्मद इकबाल/दावेदारों ने पुनः जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे से दिनांक 25.02.1991 के समझौते के खंड 10 के आधार पर कानून के अनुसार उपलब्ध उपायों को प्राप्त करने से परहेज किया और पुनः उपायों को प्राप्त करने के लिए शॉर्ट-कट विधि का प्रयास किया जो कानून में स्वीकार्य नहीं है।

9. यह ध्यान देने योग्य है कि मोहम्मद इकबाल द्वारा दायर नि.प्र.अ. (मू.प.) 13/2004 की कार्यवाही के दौरान/दावेदारों ने जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादों के साथ खंड 19 को लागू करने से परहेज किया, जो उनके अधिकारों को लागू करने के लिए 25.02.1991 के समझौते के संबंध में मध्यस्थता का प्रावधान करता है।

10. 1999 और 2009 के बीच दावेदारों ने जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादों के साथ 25.02.1991 के समझौते के आधार पर डिक्री के निष्पादन को प्राप्त करने का प्रयास जारी रखा और उचित कानूनी कार्यवाही शुरू करने में विफल रहे और समझौते के तहत दावेदार के अधिकारों के प्रवर्तन के लिए समझौते के खंड 19 के अनुसार मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने में भी विफल रहे।"

48. दलीलों के पूर्ण होने पर, विद्वान मध्यस्थ द्वारा मुद्दे तैयार किए गए, जिसमें मुद्दा संख्या I परिसीमा पर है और निम्नानुसार है:

"1. क्या वर्तमान संदर्भ में दावेदारों द्वारा दावा की गई राहतें परिसीमा कानून द्वारा वर्जित हैं, जैसा कि प्रत्यर्थीगण द्वारा तर्क दिया गया है? यदि नहीं, तो दावेदार किन राहत(ओं) के हकदार हैं?

49. प्रत्यर्थीगण द्वारा धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) का विशेष रूप से आग्रह करने के निवेदनों को विद्वान मध्यस्थ द्वारा आक्षेपित निर्णय के अनुच्छेद 10 और 12 में भी ध्यान दिया गया है।

"10. ...वैकल्पिक रूप से, विद्वान अधिवक्ता ने यह सुनिश्चित किया है कि दावेदारों की समझ में, 25.02.1991 के आदेश ने वाद को वापस लेने के बावजूद निपटाने के लिए एक लागू करने योग्य डिक्री उत्पन्न की और जैसा कि उन्होंने सद्भावपूर्वक और उचित परिश्रम के साथ वर्ष 1999 से 2019 तक माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष निष्पादन कार्यवाही का मुकदमा चलाया, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 के संदर्भ में (जिसे बाद में परिसीमा अधिनियम कहा जाएगा) यह अवधि कानून में किसी भी वाद या कार्यवाही के लिए सीमा की अवधि की गणना करने में बाहर रखे जाने योग्य है और इस प्रकार 30.01.2020 को किए गए इस संदर्भ में पंजीकृत दावे सीमा की अवधि के भीतर हैं।....

12. ...इन दावों के प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के, श्री बंसल ने दृढ़तापूर्वक आग्रह किया है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा इस बात को देर से स्वीकार करने के मद्देनजर कि परियोजना को वर्ष 1999 में छोड़ दिया गया था, यह उपयुक्त मामला है जिसमें दावेदार जो उस समय से ही अपनी राहतों का ईमानदारी से पीछा कर रहे हैं, उन्हें अधिनियम की धारा 43(3) के साथ परिसीमा अधिनियम की धारा 14 का लाभ दिया जाना चाहिए। इस दलील के समर्थन में, श्री बंसल ने निष्पादन कार्यवाही की शुरुआत से लेकर विभिन्न मंचों द्वारा पारित किए गए दलीलों और आदेशों के पूरे दायरे का हवाला दिया है।

50. प्रत्यर्थीगण द्वारा लिखित रूप से जवाबी तर्क प्रस्तुत करने पर, विद्वान मध्यस्थ ने याचिकाकर्ताओं/प्रति-दावेदारों को अपना जवाब दाखिल करने का अवसर दिया, जिसका उन्होंने लाभ नहीं उठाया। विद्वान मध्यस्थ ने आक्षेपित निर्णय में इस बात को उचित रूप से ध्यान दिया है:

"9....दावेदारों के लिए विद्वान अधिवक्ता ने भी अपने मौखिक प्रस्तुतियों के पूरक के रूप में अपने जवाबी तर्कों का लिखित लेख प्रस्तुत किया है। हालाँकि, प्रत्यर्थीगण के लिए विद्वान अधिवक्ता ने कोई लिखित परिशिष्ट दाखिल नहीं करने का निर्णय किया। ''

51. अधिनियम के अध्याय V और ***राम सरूप गुप्ता (***पूर्वोक्त) के संयुक्त अध्ययन से निम्नलिखित सिद्धांत निकाले जा सकते हैं: क) मध्यस्थता कार्यवाही अधिक लचीली होती है और सि.प्र.सं. या साक्ष्य अधिनियम के तहत प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं से कड़ाई से बंधी नहीं होती है, तथा पक्षकार अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर सहमत हो सकते हैं; ख) दलीलों को उदार व्याख्या दी जानी चाहिए, अर्थात सार पर विचार किया जाना चाहिए न कि रूप पर, और जब तक पक्षकारों को मामला और उसके मुद्दे की जानकारी हो।

52. वर्तमान मामले में इन सिद्धांतों को लागू करते हुए, यह देखा गया है कि खंड 14 (परिसीमा अधिनियम) का आधार, सार और रूप दोनों में, प्रत्यर्थीगण द्वारा अपने अभिवचनों के साथ-साथ अपने मौखिक/लिखित प्रस्तुतियों में आग्रह किया गया है, जिसमें खंड 14 (परिसीमा अधिनियम) के तत्व बनाए गए हैं। याचिकाकर्ताओं ने अपने बचाव के बयान में भी खंड 14 के आधार का विरोध किया है। इसके बाद, विद्वान् मध्यस्थ द्वारा परिसीमा पर मुद्दा तैयार किया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ताओं को पूरी तरह से पता था कि परिसीमा के मुद्दे पर खंड 14 (परिसीमा अधिनियम) पर चर्चा होगी। मेरा विचार है कि याचिकाकर्ताओं के पास खंड 14 के तर्क को पूरा करने और साक्ष्य देने का पर्याप्त अवसर था।

53. इसलिए, ऊपर बताए गए कारणों से, यह तर्क कि आक्षेपित पंचाट प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है क्योंकि धारा 14 (सीमा अधिनियम) की दलील केवल प्रत्युत्तर में थी और "अभिवचनों" में नहीं थी, इस न्यायालय को स्वीकार्य नहीं है।

धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) की प्रयोज्यता/अप्रयोज्यता पर

54. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि वर्ष 1999 से 2019 तक प्रत्यर्थीगण मुकदमे में लगे रहे जो कानून में बनाए रखने योग्य नहीं था और इसलिए, परिसीमा अधिनियम की धारा 14 का लाभ प्रत्यर्थीगण को गलत तरीके से दिया गया है। इसके लिए, ***रवींद्र नाथ सैमुअल डॉसन*** (पूर्वोक्त), ***दीना*** (पूर्वोक्त), ***मोहिंदर प्रकाश*** (पूर्वोक्त) और ***माधवराव नारायणराव पटवर्धन*** (पूर्वोक्त) मामले पर निर्भर किया जाता है।

55. उपर्युक्त निर्णयों में धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) की प्रयोज्यता और अनुपयुक्तता के मुद्दे पर विचार किया गया है। ***रवींद्र नाथ सैमुअल डॉसन*** (पूर्वोक्त) के तथ्यों को देखते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय का मानना था कि यह स्पष्ट था कि पिछला वाद (आवश्यक पक्ष के गैर-संयुक्तीकरण के लिए) बनाए रखने योग्य नहीं था, इस बारे में आपत्तियाँ बहुत ही प्रारंभिक चरण में उठाई गई थीं और इसके बावजूद, पक्ष ने संशोधन के चरण तक वाद को आगे बढ़ाने का जोखिम उठाया। इसने अभिनिर्धारित किया कि यह पिछली कार्यवाही को सद्भावपूर्वक चलाने का मामला नहीं था, और इसमें

अपीलकर्ता को धारा 14 का लाभ देने से इनकार कर दिया। ***दीना*** (पूर्वोक्त) मामले में न्यायालय ने इसी पर भरोसा किया था।

56. ***मोहिंदर प्रकाश*** (पूर्वोक्त) में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 14 का लाभ प्राप्त करने के लिए वादी पर यह दिखाने का दायित्व है कि वह पूरी लगन और सद्भावना के साथ गलत उपाय अपना रहा था जिसके लिए उसे यह साबित करना होगा कि उपाय या गलत मंच के चयन में उसने गलती की, जिसे उचित लगन और सद्भावना के साथ जारी रखा जा रहा था, जिसे "उचित सावधानी और ध्यान के प्रयोग" के रूप में परिभाषित किया गया है। ***माधवराव नारायणराव पटवर्धन*** (पूर्वोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या "उचित सावधानी और ध्यान" दिए जाने पर, वादी लगभग 10 वर्ष या उससे अधिक समय तक प्रतीक्षा किए बिना चूक (वाद में शामिल संपत्तियों के मूल्य का उल्लेख करने के लिए शिकायत में) का पता लगा सकता था। इसकी राय में, मामले के तथ्यात्मक स्वरूप को देखते हुए वादी धारा 14 के लाभ का हकदार नहीं था।

57. इन निर्णयों में निर्धारित कानूनी प्रस्तावों के संबंध में कोई विवाद नहीं है।

58. ऐसा कहने के बाद, याचिकाकर्ताओं की दलील, संक्षेप में, विद्वान मध्यस्थ के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य की पुनः सराहना के बराबर है। अधिनियम की धारा 34 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय

केवल यह आकलन करना चाहता है कि मध्यस्थ का निष्कर्ष तर्कसंगत था, और उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से निष्कर्ष निकाला गया था कि किसी भी महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा नहीं किया गया था।

59. विद्वान मध्यस्थ ने आक्षेपित निर्णय के अनुच्छेद 50-52 में धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) के तहत लाभ का दावा करने के कानून पर चर्चा की है और उसके बाद अनुच्छेद 58 में इस बात पर अपने निष्कर्ष दिए हैं कि क्या धारा 14 के तत्व वर्तमान मामले में संतुष्ट हैं या नहीं। प्रभावी भाग इस प्रकार हैं:

> *"50. धारा 14 की उप-धारा 1 और 2 के संचयी पठन से यह प्रतिपादित होता है कि किसी भी वाद या आवेदन के लिए सीमा की अवधि की गणना करने में, जिस समय के दौरान वादी/आवेदक उचित परिश्रम के साथ वाद चला रहा था, और सिविल कार्यवाही चाहे वह प्रथम दृष्टया न्यायालय में हो या प्रतिवादी/विपरीत पक्ष के खिलाफ उसी मामले के लिए या उसी राहत के लिए अपील या पुनरीक्षण, न्यायालय में सद्भाव में, जो क्षेत्राधिकार के दोष या इसी तरह की प्रकृति के अन्य कारण से उस पर विचार करने में असमर्थ है, को बाहर रखा जाएगा। **धारा के स्पष्टीकरण के खंड (ग) में स्पष्ट किया गया है कि पक्षों या वाद हेतुक का गलत संयोजन अधिकार क्षेत्र के दोष के साथ समान प्रकृति का कारण माना जाएगा।***
>
> *51. इस न्यूनीकरण प्रावधान का लाभ उठाने के लिए वैधानिक रूप से निर्धारित पूर्वापेक्षाएँ हैं:*
>
> *I. वादी/आवेदक ने उचित परिश्रम के साथ अन्य सिविल कार्यवाही की है।*
>
> *II. ऐसी सिविल कार्यवाही प्रथम दृष्टया या अपील अथवा पुनरीक्षण न्यायालय में हो सकती है।*

III. ऐसी सिविल कार्यवाही उसी प्रतिवादी/विपरीत पक्ष के विरुद्ध है।

IV. कार्यवाही उसी मुद्दे से संबंधित है या उसी राहत के लिए है।

V. यह कार्यवाही सद्भावपूर्वक ऐसे न्यायालय में संचालित की गई है जो अधिकारिता के दोष या इसी प्रकार के अन्य कारण से इस पर विचार करने में असमर्थ है।

VI. यदि खंड 1 से 5 में आकस्मिकताएं विद्यमान हैं, तो वह समय जिसके दौरान वादी/आवेदक सिविल कार्यवाही कर रहा है तो उसी मामले से संबंधित या उसी राहत के लिए किसी वाद या आवेदन के लिए निर्धारित सीमा अवधि की गणना के लिए बाहर रखा जाएगा।

52. परिसीमा अधिनियम की धारा 14 का विस्तार और आयाम, यदि इसके लागू होने के लिए अन्य सभी पूर्व शर्तें सह-अस्तित्व में हों, तो स्पष्ट रूप से 'समान प्रकृति का अन्य कारण' शब्दों द्वारा परिभाषित किया जाता है, यद्यपि इसका स्पष्टीकरण, उदाहरणात्मक रूप से यह स्पष्टीकरण प्रदान करता है कि पक्षों का गलत संयोजन या वाद हेतुक को क्षेत्राधिकार के दोष के साथ समान प्रकृति का कारण माना जाएगा।''

.....

58. स्मरण रहे कि दावेदारों के पूर्ववर्ती हितधारी ने 25.02.1991 से आठ वर्षों के लम्बे अंतराल के बाद, माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष समझौते के खंड 10 के अनुसार विवादित भूमि को वापस प्राप्त करने के लिए निष्पादन याचिका दायर की थी, जिसमें यह मानना था कि पक्षों के बीच समझौते के आधार पर वाद को वापस लेने के आदेश से कानून में निष्पादन योग्य समझौता डिक्री प्राप्त हुई थी। प्रत्यर्थीगण के पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा इस प्रयास का मुख्य रूप से दो कारणों से विरोध किया गया था, अर्थात् कोई निष्पादन योग्य डिक्री मौजूद नहीं थी और परियोजना को छोड़ा नहीं गया था। यद्यपि पहले दौर में विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश दिनांकित 12.03.2004 में यह माना था कि निष्पादन योग्य कोई डिक्री नहीं थी और दावेदारों के पूर्ववर्ती हितधारी को

कानून के अनुसार समझौते के खंड 10 के आधार पर अन्य उपाय तलाशने के लिए छोड़ दिया था, अपील में विद्वान खंडपीठ ने दिनांक 18.11.2005 के आदेश द्वारा उक्त दृष्टिकोण से मतभेद व्यक्त किया और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए वापस भेज दिया, जिसके बाद विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश दिनांक 30.11.2007 द्वारा अभिनिर्धारित किया कि डिक्री धारक अर्थात् दावेदारों के पूर्ववर्ती हितधारी विवादित भूखंड पर कब्जे के वारंट का हकदार था और ऐसा वारंट जारी करने का निर्देश दिया। प्रत्यर्थीगण के पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा दायर अपील में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय की विद्वान खंडपीठ ने अपने आदेश दिनांक 15.04.2009 द्वारा हालांकि इस दृष्टिकोण को बहाल किया कि खारिज किया गया वाद निष्पादन योग्य डिक्री को जन्म नहीं दे सकता। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दावेदारों द्वारा इसके विरुद्ध प्रस्तुत अपील में, समझौते से उत्पन्न विवाद को गुणागुण के आधार पर निर्णय दिए बिना ही पक्षों की सहमति से मध्यस्थता के लिए भेज दिया गया है।

घटनाओं के उपरोक्त स्वीकृत अनुक्रम को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण, संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों में, यह मानने के लिए आश्वस्त नहीं है कि दावेदारों और उनके पूर्ववर्ती हितधारी ने वर्ष 1999 से 2019 तक निष्पादन कार्यवाही को आगे बढ़ाने में सद्भावना और परिश्रम की कमी की। तथ्य यह है कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान खंडपीठ ने अपने आदेश दिनांक 18.11.2005 में सार रूप में यह विचार व्यक्त किया था कि कानून में निष्पादन योग्य डिक्री मौजूद थी और विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश दिनांक 30.11.2007 द्वारा समझौते के खंड 10 में निहित उपक्रम को प्रभावी करने के लिए इस तरह की डिक्री के निष्पादन में कब्जे का वारंट जारी किया था जो काफी हद तक इस कटौती का समर्थन करता है। यद्यपि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश और उसके विद्वान खंडपीठ ने दिनांक 12.03.2004 और 15.04.2009 के आदेश द्वारा अन्यथा अभिनिर्धारित किया था तथापि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष

गुणागुण के आधार पर इस मुद्दे पर विचार नहीं किया गया और इसका उत्तर नहीं दिया गया।

जैसा कि पहले कहा गया है, यह प्रश्न वर्तमान संदर्भ की समझ से परे है और इसलिए इस पर और विस्तार से चर्चा करना अनावश्यक है। तथ्यों के समग्र परिप्रेक्ष्य में यह दर्ज करना पर्याप्त है कि दावेदारों और उनके पूर्ववर्ती हितधारी ने निष्पादन कार्यवाही को आगे बढ़ाने में सद्भावना, नेकनीयती और परिश्रम की कमी की, जो वास्तव में अधिनियम की धारा 14 के अर्थ के भीतर एक सिविल कार्यवाही है। निष्पादन कार्यवाही, मुद्दे में एक ही मामले से संबंधित है और परियोजना के परित्याग पर समझौते के खंड 10 के तहत विवादित भूमि का प्रतिवर्तन भी संदेह से परे है। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 12.03.2004 के आदेश और ऊपर उल्लिखित उक्त न्यायालय के विद्वान खंडपीठ के दिनांक 15.04.2009 के आदेश में दर्ज कारणों को ध्यान में रखते हुए, निष्पादन कार्यवाही में दावा की गई राहत(ओं) को अस्वीकार करते हुए, यह न्यायाधिकरण इस स्पष्ट राय पर है कि दावेदारों के पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा दायर निष्पादन कार्यवाही को स्वीकार करने से इनकार करना, परिसीमा अधिनियम की धारा 14 में लागू अभिव्यक्ति 'समान प्रकृति के अन्य कारण' के दायरे में आता है। इस प्रकार, दावेदारों को परिसीमा अधिनियम की धारा 14 का लाभ देने के लिए वैधानिक रूप से निर्धारित पूर्व शर्तें पूरी हो जाती हैं।

इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, दावेदार, वर्तमान संदर्भ के लिए सीमा अवधि की गणना के उद्देश्य से, निष्पादन कार्यवाही के लिए समर्पित वर्ष 1999 से 2019 तक के समय को छोड़कर, हकदार हैं। इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 17.09.2019 को विवाद(ओं) को निर्दिष्ट करते समय उनके द्वारा पंजीकृत दावे और 30.01.2020 को इस न्यायाधिकरण में दर्ज किए गए दावे सीमा द्वारा वर्जित नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, दावेदारों और उनके पूर्ववर्ती हितधारक की ओर से किसी भी चूक, लापरवाही, निष्क्रियता या प्रयासों में ढिलाई को, समझौते के खंड 10 के तहत विवादित भूमि पर कब्जा

हासिल करने के उनके प्रयास में दो दशकों से अधिक समय तक चलने वाली निष्पादन कार्यवाही के दौरान नहीं समझा जा सकता है। उक्त खंड के अनुसार, परियोजना के परित्याग पर, 435 वर्ग गज का विवादित भूखंड दावेदारों को वापस करना होगा, जिसके बाद समझौता शून्य और निरर्थक हो जाएगा। यह नहीं कहा जा सकता कि समझौता पक्षों पर बाध्यकारी है और अभी भी लागू है और इसलिए, परियोजना के परित्याग पर, प्रत्यर्थीगण इसके खंड 10 के तहत दावेदारों को विवादित भूमि का कब्ज़ा वापस देने के लिए बाध्य हैं। प्रत्यर्थीगण की दलील कि दावेदार के दावे सीमा द्वारा वर्जित हैं, इसलिए कायम नहीं रह सकती और इसलिए खारिज की जाती है।"

60. इस प्रकार, धारा 14 (परिसीमा अधिनियम) और उसके घटकों के परीक्षण को विद्वान मध्यस्थ द्वारा विधिवत रूप से विज्ञापित किया गया है, जिसमें उन्होंने अपने दृष्टिकोण को सही ठहराने के लिए पर्याप्त तर्क दिए हैं कि प्रत्यर्थीगनण यहाँ सद्भावनापूर्वक गलत उपाय अभियोजन चला रहे थे और उन्हें धारा 14 के तहत लाभ दिया जाना चाहिए। ये निष्कर्ष न तो मनमाने हैं और न ही अस्थिर हैं, और ये सिविल कोर्ट के आदेशों में दिए गए साक्ष्यों पर आधारित हैं जो मध्यस्थता से पहले मुकदमे की उतार-चढ़ाव भरी प्रकृति को दर्शाते हैं। विद्वान मध्यस्थ का निष्कर्ष कानून और साक्ष्य के आधार पर उचित है। मेरा मानना है कि विद्वान मध्यस्थ के निष्कर्षों में कोई विकृति या अवैधता नहीं है और याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस आधार पर हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं बनाया गया है।

61. इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोघारा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड,*** (2009) 1 एससीसी 267, मामले में विशेष रूप से निर्णय के पैराग्राफ 22 पर निर्भर किया है, जो इस प्रकार है:

> *"22. जहां धारा 11 के तहत मध्यस्थ न्यायाधिकरण की नियुक्ति के लिए न्यायालय के हस्तक्षेप की मांग की जाती है, मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित व्यक्ति का कर्तव्य एसबीपी एंड कंपनी [(2005) 8 एससीसी 618] में परिभाषित किया गया है। इस न्यायालय ने प्रारंभिक मुद्दों की पहचान की और उन्हें तीन श्रेणियों में अलग किया, जो अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन में विचार के लिए उत्पन्न हो सकते हैं, अर्थात, (i) मुद्दे जिन पर मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित व्यक्ति निर्णय लेने के लिए बाध्य हैं; (ii) मुद्दे जिन पर वह भी निर्णय कर सकते हैं, अर्थात, मुद्दे जिन पर निर्णय लेने का निर्णय वह स्वयं ले सकते हैं; और (iii) मुद्दे जिन पर निर्णय करने के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर छोड़ दिया जाना चाहिए।*
>
> *....*
>
> *22.2. मुद्दे (दूसरी श्रेणी) जिन्हें मुख्य न्यायाधीश/उनके नामित व्यक्ति तय करने के लिए चुन सकते हैं (या उन्हें मध्यस्थ न्यायाधिकरण के निर्णय पर छोड़ सकते हैं) हैं:*
>
> *(क) क्या दावा सक्रिय (दीर्घ-अवरुद्ध) दावा है या निष्क्रिय दावा है।*
>
> *(ख) क्या पक्षों ने अपने पारस्परिक अधिकारों और दायित्व की संतुष्टि दर्ज करके या बिना किसी आपत्ति के अंतिम भुगतान प्राप्त करके अनुबंध/लेनदेन को संपन्न किया है।"*

62. वर्तमान मामले में, विद्वान मध्यस्थ ने पहले ही यह निष्कर्ष दे दिया है कि प्रत्यर्थीगण का दावा सक्रिय दावा था और मेरा मानना है कि उक्त निष्कर्ष कानून की सही समझ पर आधारित है अथवा विद्वान मध्यस्थ के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य पर आधारित है।

63. मेरा मानना है कि विद्वान मध्यस्थ के आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है, जिसमें उन्होंने कहा है कि प्रत्यर्थीगण का दावा समय-सीमा के भीतर था। इस प्रकार, दावे पर दिए गए पंचाट में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

हानि, ब्याज और लागत पर

64. जहां तक प्रत्यर्थीगण के दावे II को स्वीकार किए जाने का सवाल है, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि विद्वान मध्यस्थ ने मुआवजा (दावा की गई राशि 25,00,000/- रुपये के विरुद्ध 15,00,000/- रुपये) देकर तथा यह निर्णय देकर कि भूमि को निर्माण सहित पुनः वितरित किया जाना चाहिए, समझौते के दायरे से बाहर जाकर काम किया है, जो केवल विवादित भूखंड को वापस करने का प्रावधान करता है (समझौते का खंड 10)।

65. क्षतिपूर्ति पर मुद्दा विद्वान मध्यस्थ द्वारा तैयार किया गया था और दावा II पर उनकी चर्चा नीचे पुन: प्रस्तुत है:

"61. दावा संख्या II के संदर्भ में, हालांकि दावेदारों ने अपने दलीलों में अपने पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा विवादित भूखंड पर किए गए निर्माणों का उल्लेख किया है और स्थानीय आयुक्त द्वारा वाद में प्रस्तुत उस आशय की रिपोर्ट और तस्वीरों का भी हवाला दिया है, लेकिन इसमें ऐसा कोई कथन नहीं है, जो इसके मूल्यांकन का कोई आधार प्रस्तुत करता हो। प्रत्यर्थीगण ने अपनी दलीलों में उक्त निर्माणों के अस्तित्व को स्वीकार किया है, लेकिन इसे अवैध बताते हुए इसे खारिज कर दिया है, दावेदारों के पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा विवादित भूमि पर कब्जे को किसी कानूनी अधिकार के बिना अस्वीकार कर दिया है।

....

....फिर से दोहराते हुए, वर्तमान संदर्भ में अधिकरण को इसके दायरे को ध्यान में रखते हुए, मोहम्मद इकबाल द्वारा विवादित भूखंड के कब्जे या समझौते के अनुसार मोहम्मद अमीन को भूखंड सौंपे जाने के समय उस पर मौजूद निर्माण की वैधता या अन्यथा की जांच करने की आवश्यकता नहीं है। गौरतलब है कि हालांकि दावेदारों ने उक्त निर्माणों को ध्वस्त करने के साथ-साथ विवादित भूखंड के इस शीर्ष के तहत देरी से प्रत्यावर्तन के लिए 25,00,000/- रुपये (पच्चीस लाख रुपये) के मुआवजे और या नुकसान की मांग की है, इस आशय का कोई सबूत नहीं है|

66. इसके बाद, विद्वान मध्यस्थ ने उन मामलों में मुआवज़ा/क्षतिपूर्ति की गणना के लिए विभिन्न निर्णयज विधि का गहन अध्ययन किया है, जहाँ नुकसान को साबित करने के लिए कोई सबूत उपलब्ध नहीं है और/या पेश नहीं किया गया है। प्रमुख भाग इस प्रकार है:

"62. कुछ तथ्यात्मक स्थितियों में, जहां या तो नुकसान को साबित करने के लिए कोई सबूत उपलब्ध नहीं है या ऐसे सबूत की कमी है, मुआवजा/क्षतिपूर्ति की गणना करना कठिन चुनौती है।

एफ.टी. किंग्सले बनाम भारत के सचिव परिषद मामले में, माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय (एआईआर 1923 कैल. 49) की खंडपीठ असम में हाथियों को पकड़ने के लिए लाइसेंस के संबंध में नुकसान से संबंधित विवाद की सुनवाई कर रही थी। वादी-अपीलकर्ता का मामला यह था कि वह उतने हाथी नहीं पकड़ सका, जितने वह पकड़ सकता था, लेकिन प्रतिवादी के अधिकारियों के गलत कामों के कारण ऐसा नहीं हो सका। वादी ने विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध माननीय उच्च न्यायालय में अपील की थी, जिसमें तर्क दिया गया था कि उसे अपर्याप्त हर्जाना दिया गया था। दावे के समर्थन में साक्ष्य की अपर्याप्तता का पहलू जांच के लिए सामने आया। दावे के समर्थन में साक्ष्य की अपर्याप्तता का पहलू जांच के लिए सामने आया। इस संदर्भ में, अन्य बातों के साथ-साथ, उनके माननीय न्यायाधीशों ने निर्णय सुनाया कि ऐसे मामलों में जहां इस तरह के नुकसान के सबूत की अनुमति है, राशि को उचित निश्चितता के साथ निर्णित किया जाना चाहिए, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पूर्ण निश्चितता की आवश्यकता है और न ही सभी मामलों में राशि के लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य की आवश्यकता है।

यह अभिनिर्धारित किया गया है कि नुकसान अनिश्चित नहीं है क्योंकि नुकसान गणितीय प्रदर्शन की निश्चितता के साथ साबित करने में असमर्थ है, या कुछ हद तक आकस्मिक है अथवा सटीक माप में असमर्थ है। उनके आधिपत्य ने हेट्ज़ेल बनाम बाल्टीमोर 27 और ओ.आर. को. (1897) 169 यूएस 26 पृष्ठ 38 पर संयुक्त राज्य अमेरिका के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया, कि उचित सीमा तक निश्चितता आवश्यक है, और उस भाषा का अर्थ यह है कि नुकसान या क्षति को अटकलों या संदेह से इतना दूर रखा जाना चाहिए कि बुद्धिमान और तर्कशील पुरुषों के मन में यह विश्वास पैदा हो कि इसके अनुबंध के उल्लंघन से होने की सबसे अधिक संभावना थी और इसका संभावित और प्रत्यक्ष परिणाम था। मॉरिस बनाम यूनाइटेड स्टेट्स [(1898) 174 यू.एस 196 पृष्ठ 291] में यह निर्धारण कि जहां पूर्ण निश्चितता असंभव है, सीधे परिणामस्वरूप

होने वाले नुकसान के रूप में निष्पक्ष लोगों का निर्णय नियंत्रित करता है। उनके आधिपत्य ने एलिसन बनाम चैंडलर (1863) 11 मिच. 542 में माननीय न्या. क्रिस्चियनसी, द्वारा की गई टिप्पणी पर भी ध्यान दिया, कि पीड़ित पक्ष को हर्जाना वसूलने की अनुमति देने के लिए शर्त के रूप में निश्चितता के साथ सटीक राशि के सबूत पर जोर देने से निश्चितता सुनिश्चित होगी, लेकिन अन्याय की निश्चितता भी होगी, अगर ऐसा पक्ष जूरी को संतुष्ट करने के लिए यह दिखाने के लिए तैयार है कि उल्लंघन के कारण उसे बड़ी क्षति हुई है। विलियम्स बनाम गिड्डी (1911) ए.सी. 381 में की गई टिप्पणी कि मामले का सार यह है कि निश्चितता के लिए केवल ऐसे सन्निकटन की आवश्यकता है जो विवेकशील और निष्पक्ष व्यक्ति के दिमाग को संतुष्ट करे, को रेखांकित किया गया।

63. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने द्वारका दास बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, (1999) 3 एससीसी 500, मामले के तथ्यों के आधार पर यह स्वीकार किया कि जहां अनुबंध के उल्लंघन के कारण हुई वास्तविक हानि को प्रदर्शित करने के लिए साक्ष्य अपर्याप्त थे, वहां उचित समझे जाने वाले अनुमान के आधार पर क्षतिपूर्ति प्रदान करने की अनुमति है।

उपर्युक्त प्रतिपादन किसी मामले के सहवर्ती तथ्यों और परिस्थितियों में स्वीकार्य मुआवजे की मात्रा का आकलन करने के लिए निर्णय मंच के विवेक के न्यायिक प्रभाव को प्रतिपादित करते हैं, जैसा कि उचित माना जाता है, उसके संबंध में प्रत्यक्ष और पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में, यदि यह अन्यथा संतुष्ट है कि जिस पक्ष के अनुबंध का उल्लंघन हुआ है, इस तरह के मुआवजे या क्षति का हकदार है।''

67. इसके आधार पर, विद्वान मध्यस्थ ने अभिनिर्धारित किया है:

"64. अनुबंध के खंड 10 की कसौटी पर देखा जाए तो, प्रत्यर्थीगण और उनके पूर्ववर्ती हितधारी की ओर से वर्ष 1999 में परियोजना के परित्याग पर विवादित भूखंड और उस पर मौजूद निर्माण को दावेदारों और उनके पूर्ववर्ती हितधारी को वापस देने में देरी या विफलता, उक्त संविदात्मक

अनुबंध का स्पष्ट उल्लंघन है, जिससे ऐसे उल्लंघन के कारण दावेदारों और उनके पूर्ववर्ती हितधारी को हुए किसी भी नुकसान या क्षति के लिए उन्हें मुआवजा देना होगा। यदि 25.02.1991 तक विवादित भूमि पर खड़े निर्माण को प्रत्यर्थीगण और उनके पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा वास्तव में ध्वस्त कर दिया गया है, तो वे दावेदारों और उनके पूर्ववर्ती हितधारी को हुए परिणामी नुकसान के लिए मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी होंगे। 65.अभिलेख, विशेष रूप से स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट और वाद सं 31/1989 में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत स्थल पर निर्माणों की तस्वीरें, जैसा कि इसके द्वारा अपेक्षित है, वर्ष 1989 में वाद दायर किए जाने से पहले निम्नलिखित निर्माणों/संरचनाओं के अस्तित्व को प्रदर्शित करती हैं:

1) लोहे के द्वार के साथ पुरानी चारदीवारी।

2) एक छोटा सा कमरा।

3) डी.पी.सी./ग्राउंड लेवल से लगभग साढ़े चार फीट ऊंचाई पर चल रहे नए निर्माण कार्य।

4) एक हैंडपंप।

दलीलों के दौरान दावेदारों की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि इन निर्माणों/संरचनाओं को प्रत्यर्थीगण और उनके पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा तब ध्वस्त कर दिया गया था, जब विवादित भूमि को दावेदारों के पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा उन्हें सौंप दिया गया था। प्रत्यर्थीगण की ओर से इस दावे का खंडन नहीं किया गया है। मामले के इस दृष्टिकोण से, इन निर्माणों/संरचनाओं को वास्तव में प्रत्यर्थीगण और उनके पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा ध्वस्त और उपयोग किया गया है, जबकि वे उनकी हिरासत और कब्जे में थे, उन्हें विवादित भूमि के खाली कब्जे के साथ-साथ दावेदारों को आज की स्थिति में इसके धन मूल्य का भुगतान करने की आवश्यकता है। 25.02.1991 या उस मामले के लिए 1989 में मौजूद निर्माणों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, न्यायाधिकरण मोटे तौर पर, इसका वर्तमान मूल्य 15,00,000/- रुपये (केवल पंद्रह लाख रुपये)

निर्धारित करता है। दावा संख्या II को इस सीमा तक अनुमति दी जाती है।"

68. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ***अलोपी पार्षद एंड संस लिमिटेड*** (पूर्वोक्त), ***नैहाटी जूट मिल्स लिमिटेड*** (पूर्वोक्त) और ***डब्ल्यू बी स्टेट वेयरहाउसिंग कॉरपोरेशन*** (पूर्वोक्त) मामले पर निर्भर करते हुए कहा कि यदि अनुबंध की स्पष्ट शर्तों की अनदेखी करके क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती है, तो मध्यस्थ कार्यवाही में कदाचार करेगा और अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य करेगा।

69. इस भरोसे की गलत व्याख्या की गई है। ***अलोपी पार्षद एंड संस लिमिटेड*** (पूर्वोक्त) में मध्यस्थों ने एजेंटों को स्पष्ट रूप से निर्धारित प्रतिफल से अधिक मुआवजा दिया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इससे असहमति जताई और अभिनिर्धारित किया कि जहां अनुबंध में ही उस संबंध में देय प्रतिफल का प्रावधान है, वहां मुआवजा जितना काम उतना दाम के आधार पर नहीं दिया जा सकता। डब्ल्यूबी स्टेट वेयरहाउसिंग कॉरपोरेशन (पूर्वोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का विचार था कि मध्यस्थ ने अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया होगा यदि वह किसी ऐसे दावे का निर्णय करता है जिसका दावा उसके समक्ष नहीं किया जा सकता। यह अनुबंध या कानून में कोई विशिष्ट शर्त हो सकती है जो पक्षों को मध्यस्थ के समक्ष कोई मुद्दा उठाने की अनुमति नहीं देती है, या अनुबंध में किसी विशेष मुद्दे को उठाने के खिलाफ कोई विशिष्ट प्रतिबंध है।

नैहाटी जूट मिल्स लिमिटेड (पूर्वोक्त) में मुद्दा पूरी तरह से अलग था यानी अनुबंधों की निराशा और उसमें निहित मध्यस्थता खंडों पर इसके परिणामी प्रभाव के बारे में।

70. तीनों मामले मौजूदा मामले से अलग हैं। इस मामले के तथ्यात्मक पहलू में, प्रत्यर्थीगण के पूर्ववर्ती हितधारी के कब्जे में जो भूमि थी, उस पर निश्चित रूप से अधिरचनाएँ थीं, जब भूमि का कब्जा याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती हितधारी को दिया गया था। चूंकि याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती हितधारी परियोजना को पूरा नहीं कर सका, इसलिए विवादित भूखंड को समझौते के खंड 10 के अनुसार वापस किया जाना था। समझौता इस बात पर निष्क्रिय है कि विवादित भूखंड को 1991 में उस पर मौजूद निर्माणों के साथ वापस किया जाना था या नहीं, और समझौते में प्रत्यर्थीगण को विद्वान मध्यस्थ के समक्ष क्षतिपूर्ति का दावा करने से रोकने के लिए कोई विशिष्ट प्रतिबंध नहीं दिया गया है, इस संबंध में एक से अधिक दृष्टिकोण या व्याख्या संभव है।

71. अधिनियम की धारा 34 के तहत आपत्तियों पर निर्णय लेने में, इस न्यायालय को विद्वान मध्यस्थ द्वारा दिए गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए, जब तक कि यह प्रशंसनीय और तर्कसंगत निष्कर्ष हो। मेरा मानना है कि विद्वान मध्यस्थ का निष्कर्ष कि चूंकि निर्माण को याचिकाकर्ताओं द्वारा ध्वस्त कर दिया गया है, जबकि विवादित भूमि उनकी

हिरासत और कब्जे में थी और इसलिए उन्हें इसके मौद्रिक मूल्य का भुगतान करना आवश्यक है इसलिए घटनाओं के अनुक्रम को देखते हुए यह प्रशंसनीय निष्कर्ष है। विद्वान मध्यस्थ द्वारा दिए गए ***द्वारका दास बनाम मध्य प्रदेश राज्य***, *(1999) 3 एससीसी 500* के निर्णय के कारण परिमाणीकरण भी उचित और ठोस कानूनी आधार पर है, जो अनुमान के आधार पर नुकसान की अनुमति देता है (जैसा कि उचित माना जाता है) जब वास्तविक नुकसान के बारे में बहुत कम सबूत सामने आते हैं।

72. उपर्युक्त कारणों से, मेरा मानना है कि विद्वान मध्यस्थ ने कार्यवाही में कोई कदाचार नहीं किया है और प्रत्यर्थीगण के पक्ष में क्षतिपूर्ति पर दावा तय करने और पंचाट देने में अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन नहीं किया है। इसलिए, मुझे क्षतिपूर्ति पर आक्षेपित पंचाट में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता।

73. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने मेरे समक्ष लागत या ब्याज पर पंचाट के संबंध में कोई ठोस तर्क नहीं दिया है। इसलिए, इस न्यायालय द्वारा इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

<u>प्रतिदावे पर</u>

74. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने आरोप लगाया कि प्रति-दावा गलत तरीके से खारिज कर दिया गया है क्योंकि अतिक्रमित भूमि की कीमत 30 वर्षों

की अवधि में कई गुना बढ़ गई होगी, और इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं को क्षतिपूर्ति योग्य नुकसान उठाना पड़ा है।

75. इस मुद्दे पर विद्वान मध्यस्थ के निष्कर्ष नीचे पुन: प्रस्तुत हैं:

> *"66. ....श्रीमती कुलन रुखशाना अमीन, आरडब्ल्यू-1 ने अपने साक्ष्य शपथपत्र में प्रत्यर्थीगण के उपरोक्त रुख को दोहराया है। हालांकि, प्रश्न सं. 15 और 16 के उत्तर में अपने प्रति-परिक्षण में, उन्होंने प्रासंगिक अभिलेखों से याद किया कि* दिनांक *15.04.2009 तक विवादित भूखंड के विकास पर कोई रोक या निलंबन नहीं था, जब माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय की विद्वान खंडपीठ ने दावेदारों के पूर्ववर्ती हितधारी द्वारा दायर निष्पादन याचिका को खारिज कर दिया था और उसके बाद माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वि.अनु.या सिविल सं. 20119/2009 में पारित दिनांक 04.09.2019 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थीगण को केवल विवादित संपत्ति को हस्तांतरित न करने या उस पर कोई अतिक्रमण न करने का निर्देश दिया था।*
>
> *67. अधिकरण के अनुसार, प्रस्तुत किए गए कथन और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य प्रत्यर्थीगण के प्रति दावे के तथ्यात्मक आधार को साबित करने के लिए पूरी तरह से अपर्याप्त हैं। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि लंबी मुकदमेबाजी का परियोजना को शुरू करने के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा शुरू की गई प्रक्रिया पर कोई असर पड़ा है। दूसरी ओर, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उन्होंने वर्ष 1999 से 2019 तक निष्पादन कार्यवाही का दृढ़ता से विरोध किया और तर्क दिया कि परियोजना को छोड़ा नहीं गया था। उन्होंने वर्तमान संदर्भ में तर्क के चरण में ही स्वीकार किया कि परियोजना को वर्ष 1999 में परिसीमा के आधार पर दावेदार के दावों को हराने के उनके प्रयास में छोड़ दिया गया था। न तो दावेदारों और न ही उनके पूर्ववर्ती हितधारी की परियोजना की शुरुआत और पूरा होने की प्रक्रिया में कोई भूमिका थी। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि उनके द्वारा की गई निष्पादन कार्यवाही ने किसी भी तरह से*

उक्त प्रक्रिया को बाधित या बाधित किया। यदि प्रत्यर्थीगण को पता था कि परियोजना को वास्तव में वर्ष 1999 में छोड़ दिया गया था, तो समझौते के खंड 10 में दिए गए वचन के अनुसार, उन्हें और उनके पूर्ववर्ती हितधारी को विवादित भूखंड को उस पर किए गए निर्माणों के साथ दावेदारों और उनके पूर्ववर्ती हितधारी को तुरंत वापस कर देना चाहिए था। इसके बजाय, उन्होंने 2019 तक कई वर्षों तक निष्पादन कार्यवाही का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। सभी प्रासंगिक पहलुओं पर समग्र विचार करने पर, अधिकरण प्रत्यर्थीगण के प्रति दावे को बनाए रखने के लिए इच्छुक नहीं है और इसलिए इसे अस्वीकार कर दिया जाता है। मुद्दा संख्या // नकारात्मक रूप से और प्रत्यर्थीगण के खिलाफ तय किया जाता है।"

76. मुझे विद्वान मध्यस्थ के तर्क में कोई कमी नहीं दिखती। यह पक्षकारों की दलीलों पर उचित विचार करने और साक्ष्यों की सराहना करने के बाद दिया गया है। इस प्रकार, यह निष्कर्ष भी इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप का औचित्य नहीं रखता।

निष्कर्ष

77. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, मेरा मानना है कि याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 34 के तहत दिए गए निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई आधार बनाने में विफल रहे हैं। विद्वान मध्यस्थ के कोई भी निष्कर्ष ऐसे नहीं हैं कि उनमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

78. अतः याचिका खारिज की जाती है।

79. सभी लंबित आवेदन, यदि कोई हों, का निपटान किया जाता है।

<u>मू.वि.या. (प्र.) (वाणि.) 129/2021</u>

80. मू.वि.या.(वाणि.) 250/2021 में पारित आदेश के मद्देनजर, निष्पादन याचिका को अनुमति दी जाती है और यह घोषित किया जाता है कि मध्यस्थता मुकदमा सं(म.) 9/2019 में दिनांक 18.05.2021 के पंचाट के अनुसार, निर्णय-ऋणदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे डिक्री-धारकों को 268, नसीम बाग, जामिया नगर, ओखला, नई दिल्ली में स्थित 435 वर्ग गज की भूमि/भूखंड का कब्जा, आज से दो सप्ताह के भीतर, 17.07.2021 से भुगतान की तारीख तक 18% प्रति वर्ष की दर से पंचाट राशि और ब्याज के साथ सौंप दें।

81. लंबित आवेदनों, यदि कोई हो, के साथ याचिका का उपरोक्त शर्तों में निपटान किया जाता है।

न्या. जसमीत सिंह

05 अप्रैल, 2024/एस.के.एम.

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा/ समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*